ब्रह्म का स्वरूप– उपनिषद् मत

चर्चित कुमार[1]

विभिन्न आध्यात्मिक विषयों को जानने के लिए जब ऋषियों ने एकान्त में ध्यान योग से निदिध्यासन किया तो उन्होंने एक देवात्म शक्ति को देखा जो संसार का नियमन करती हैं । इसी शक्ति को उन्होंने ब्रह्म कहकर पुकारा। **'ब्रह्म'** शब्द **'बृह् वृद्धौ'** धातु से बना है जिसका अर्थ है बढना, फैलना, व्यास होना। प्रारम्भ में यह यज्ञ के लिये प्रयुक्त हुआ, किन्तु बाद में यह सर्वव्यापी परम सत्ता का वाचक बना। ब्रह्म परम तत्त्व है। वह जगत्कारण है।[2] छान्दोग्योपनिषद् में ब्रह्म को **'तज्जलान्'**[3] कहा गया है। अर्थात् ब्रह्म वह तत्त्व है (तत्), जिससे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है (ज अर्थात् जायते), जिसमें वह अन्त में लीन होता है (ल अर्थात् लीयते), और जिसमें वह जीवित रहता है (अन्) । तैत्तिरीय में भी ब्रह्म को जगत्कारण बताया गया है–जिससे यह सम्पूर्ण जड–चेतन–मय संसार उत्पन्न होता है, जिसमें यह जीवित रहता है और जिसमें पुनः विलीन हो जाता है, वह ब्रह्म है।[4] इषोपनिषद् में उसे परमतेजस्वी, शरीर–रहित, शुद्ध, पाप–पुण्य से रहित, सर्वदृष्टा, मनीषी, सर्वत्र विद्यमान स्वयम्भु और अनादि काल से सभी प्राणियों के कर्मानुसार समस्त पदार्थो की रचना करने वाला परमतत्त्व बतलाया गया है। ब्रह्म को उपनिषदों में नाम, रूप, रंग और काल की सीमा से रहित माना गया है । बृहदारण्यकोपनिषद् में उसे **'नेति–नेति'**[5] कहकर वर्णित किया है। कठोपनिषद् में उसे अंगुष्ठमात्र बतलाया गया है **'अंङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः मध्य आत्मनि तिष्ठति'**।[6] इशोपनिषद् में कहा है–

'' ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।''[7]

इस संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जिसमें ब्रह्म की सत्ता न हो । ब्रह्म इस संसार का निमित्त और उपादान कारण है। ब्रह्म ही इस संसार की उत्पत्ति, सृष्टि और विनष्टि का कारण है–

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति,

यत् प्रयन्ति अभिसमविशन्ति तद् ब्रह्म, तद् विजिज्ञासस्व।

[1] शोध छात्र, योग विज्ञान विभाग, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
मो0 नं0–09808843884, ईमेल– charchitbaliyan@gmail.com

[2] कठ. उप. 2/1/3
[3] छान्दोग्य, 3–14
[4] तैत्तिरीय, 3–1
[5] बृहदारण्य0, 4.24
[6] कठ0, 2.2
[7] इशोपनिषद् 1.

तैत्तिरीय में सृष्टि के विकासक्रम को पंचकोशों द्वारा समझाया गया है।[8] सबसे नीचे अन्नमय कोश है। यह जड द्रव्य या भौतिक पदार्थ का स्तर है। यह ब्रह्म का निम्नतम रूप है जहॉ चैतन्य सुप्त होने से लुप्त सा प्रतीत होता है। इससे ऊपर प्राणमय कोश है। इसमें चैतन्य का स्फुरण प्रारम्भ हो गया है। यह वनस्पतिजगत् का स्तर है। इससे ऊपर मनोमय कोश है। यहॉ चैतन्य मनोजगत् के रूप में प्रकट होता है। यह इन्द्रिय–सम्वेदन और बुद्धि की प्रथमावस्था का स्तर है जहॉ ज्ञान सहज–प्रवृत्ति–जन्य है। यह पशु और मानव का सम्मिलित निद्रा, भय, क्रोध, आहार मैथुनादि का स्तर है। इससे ऊपर विज्ञानमय कोश है जिसमें केवल मानव का ही अधिकार है। यह सविकल्प बुद्धि, तर्क, मनीषा और विविध ज्ञान–विज्ञान का स्तर है। इसके बाद सर्वोच्च आनन्दमय कोश है। यहॉ ब्रह्म के सत्, चित् और आनन्द का स्फुरण है। इस अखण्ड ब्रह्मानन्द की अनुभूति समाधि में होती है। यह निर्विकल्प प्रज्ञा का स्तर है, किन्तु 'कोश' होने के कारण इसमें विकल्प का लेश बना रहता है । आनन्दमय का अर्थ 'प्रचुर आनन्द' न होकर 'आनन्दरूप' है। वस्तुतः ब्रह्म इन पंच कोशों के भी पार है। निर्विशेष, निर्गुण और अनिर्वचनीय ब्रह्म का नित्य और अखण्ड आनन्द के रूप में साक्षात् निर्विकल्प अनुभव किया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द के अनुसार 'जो सम्पूर्ण जगत् की रचना कर, उस जगत् को बढाता है, उस परमेश्वर का नाम ब्रह्म है और सबसे वृद्ध है इसलिए भी वह ब्रह्म है।[9]

केनोपषिद् में ब्रह्म के विषय में कहा है कि–

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रां क उ देवो युनक्ति।।[10]

किससे प्रेरित मन अभीष्ट विषय को प्राप्त होता है, और किससे सब इन्द्रियों से प्रथम अपने कर्म में नियत हुआ प्राण–वायु अपना व्यापार करता है, और किससे प्रेरित इस वाणी को मनुष्य बोलते हैं, और नेत्रेन्द्रिय तथा कर्णेन्द्रिय को कौन प्रसिद्ध प्रकाशक देव अपने–अपने विषय के ग्रहण करने में प्रथम उत्पत्तिसमय में नियुक्त करता है। और फिर कहतें है कि–

[8] तैत्तिरीय, 3 वल्ली

[9] योऽखिलं जगन्निर्माणेन बर्हति वर्धयति स ब्रह्मा, सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म। – स.प्र., प्रथमसमुल्लास, पृ027, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, संस्करण 83

[10] केनोपनिषद्–1/1

श्रोत्रास्य श्रोत्रां मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।

चक्षुषश्चक्षुरतिमच्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।[11]

जो कर्णेन्द्रिय का श्रोत्र अर्थात् श्रवण–शक्ति देने वाला है, सुख–दुःखादि ज्ञान के साधन अन्तःकरण का मन अर्थात् मनन शक्ति देने वाला, वाणी का निश्चय से वाणी अर्थात् बोलने की शक्ति देने वाला है, चक्षु का चक्षु अर्थात् दर्शन शक्ति देने वाला है, उसको निश्चय से ध्यानी लोग सब पदार्थों से भिन्न मानकर अथवा इन्द्रियों के सुखों से पृथक रहकर इस मृत्युलोक से मरकर–पृथक होकर मरण धर्म रहित हो जाते हैं।

यद्वाचानभ्युदितं येनः वागभ्युद्यते।[12]

इसकी व्याख्या करते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहतें है कि ''जो वाणी की इदन्ता'' अर्थात् यह जल है, लीजिए वैसा विषय नहीं और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है, उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर और जो उससे भिन्न है, वह उपासनीय नहीं।''[13]

कठोपनिषद् में भी ब्रह्म की व्याख्या इसी प्रकार की है–

ऊणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धतुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।।[14]

अतः भारतीय तत्त्वज्ञान का अक्षय भण्डार उपनिषद् हैं। यद्यपि **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्'** इस प्रमाण के अनुसार मंत्र एवं ब्राह्मण–दोनों का नाम वेद है, तथापि वेद के अन्तिम भाग होने के कारण उपनिषदों को वेद का शिरोभाग कहा गया है। उपनिषद् में ब्रह्म का वर्णन दो रूपों में मिलता है। ब्रह्म के विषय में सविशेष श्रुतियॉ और निर्विशेष श्रुतियॉ दोनों उपलब्ध हैं। ब्रह्म को सविशेष, सगुण भी कहा गया है और निर्विशेष, निर्गुण भी। सगुण ब्रह्म को 'अपर' ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म को 'पर' ब्रह्म कहा गया है। अपर रूप में ब्रह्म सविशेष, सगुण, सप्रपंच, सविकल्प और सोपाधिक है, तथा पर रूप में ब्रह्म निर्विशेष, निर्गुण, निष्प्रपंच, निर्विकल्पक और निरुपाधिक है। अपर ब्रह्म की संज्ञा 'ईश्वर' भी है जो समस्त विश्व के

[11] केनोपनिषद्.–1/2
[12] केन0 1.4
[13] सत्यार्थ0 309 पृ0
[14] कठ.उप. 2/20

कर्ता, धर्ता, हर्ता और नियन्ता हैं। ब्रह्म का पर रूप अगोचर, निर्विकल्पक, अनिर्वचनीय है और केवल अपरोक्षानुभूतिगम्य है। परब्रह्म का वास्तविक स्वरूप शुद्ध चैतन्य है जो समस्त व्यवहार, समस्त ज्ञान, समस्त अनुभव का अधिष्ठान होते हुए भी उससे परे है।[15] निर्विशेष होने से वह किसी विशेषण से विशिष्ट नहीं हो सकता। निर्गुण होने से कोई गुण उसे निर्दिष्ट नहीं कर सकता। अतीन्द्रिय, निर्विकल्पक, निरुपाधि और अनिर्वचनीय ब्रह्म इन्द्रिय, बुद्धि–विकल्प और वाणी द्वारा ग्राह्य नहीं है।[16] जो शुद्ध द्रष्टा, साक्षी, विषयी है, वह बौद्धिक ज्ञान का, किसी चित्त–वृत्ति का 'विषय' नही बन सकता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं की इन्द्रिय–बुद्धि–वाणी–ग्राह्य न होने से ब्रह्म 'शुन्य' या 'अभावरूप' है। समस्त व्यवहार का अधिष्ठान होने के कारण ब्रह्म स्वतः सिद्ध और स्वप्रकाश है। उसका निषेध असम्भव है क्योंकि निषेध में भी निषेध–कर्ता के रूप में उसी ब्रह्म की सत्ता प्रकाशित हो रही हैं । कहा भी है कि **''य एव हि निराकर्ता तदेव तस्य स्वरूपम्। निषेधशेषो जयतादशेषः''** । ब्रह्म की अपरोक्षानुभूति होती है, वह स्वानुभूतिगम्य है, ब्रह्म बन कर बन कर ही ब्रह्म को जाना जा सकता है।[17] निर्विशेष और अनिर्वचनीय ब्रह्म का वर्णन यदि करना ही है, तो निषेध–मुख से करना चाहिए। इसीलिए श्रुति कहती है–यह आत्मा **'नेति नेति'** है।[18] ब्रह्म के विषय में आदेश 'नेति नेति है। ब्रह्म अमात्र, अक्षर, अद्वैत्, निर्विशेष, निर्गुण, निर्विकल्पक, निरुपाधि, अनिर्वचनीय है। वह अस्थूल, अनणु, अह्रस्व, अदीर्घ, असंग है।[19] उसमें न रस है, न गन्ध है, न स्पर्श है, न वाणी है, न मन है, न अन्दर है, न बाहर है, न वह कुछ खाता है और न उसे कोई खा सकता है।[20] वाणी और मन की पहुॅच ब्रह्म तक नहीं है, ब्रह्म को न पाकर वाणी और मन लौट आते है।[21] अतः यह माना जा सकता है कि ब्रह्म की प्राप्ति इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकती। इसके दो कारण हैं प्रथम तो इन्द्रियॉ उसी वस्तु को देख सकती हैं, उसी का श्रवण कर सकती हैं, मनन कर सकती हैं, वर्णन कर सकती हैं जिसका आकार हो या प्रत्यक्ष होता हो किन्तु ब्रह्म एक निराकार शक्ति है जिसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अतः वह इन्द्रियों के द्वारा अप्राप्य है। द्वितीय कारण इन्द्रियॉ बहिर्मुखी हैं और ब्रह्म शक्ति अन्तर्मुखी है। यदि कोई व्यक्ति इन्द्रियों को विषय वासनाओं से हटाकर अन्तर्मुखी बनाकर अपने अन्दर उस शक्ति का अनुभव करने का प्रयास करता है और जो इसमें सफल होता है, व अमृतत्त्व की प्राप्ति करता है।

---

[15] मुण्डकोप.–2/4
[16] श्वेता.उप.–6/19
[17] ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति। ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति। बृहदारण्यक, 4–4–6
[18] स एष नेति आत्मा । बृहदारण्यक, 4–4–22
[19] मुण्डकोप.–2/2
[20] बृहदारण्यक, 3–8–8
[21] केन0 1–4 से 8